TACTFUL MANAGEMENT RESEARCH JOURNAL

ISSN: 2319-7943
IMPACT FACTOR : 5.4906(UIF)
VOLUME - 6 | ISSUE - 1 | OCTOBER - 2017

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद: भारतीय राष्ट्रवाद की मूल चेतना

जितेन्द्र कुमार
शोधछात्र राजनीति विज्ञान विभाग ,इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद .

प्रस्तावना :

मनुष्य जाति की सबसे प्रमुख विशेषता उसकी संप्रेषणता–शीलता की शक्ति रही है। जिसके माध्यम से वह प्राचीनकाल से अद्यावधि धीरे–2 समीप आता गया। आधुनिक समय में हम वैश्विक–संस्कृति, वैश्विक–राजनीति व वैश्विक–ग्राम जैसी अवधारणाओं को निकटता से अनुभव कर रहें हैं। उक्त धारणाएँ संप्रेषण कौशल से ही प्रसारित की जा सकती हैं। संप्रेषण शक्ति व अनुकूल भौगोलिक संरचना के बल पर ही भारत के निवासी कान्धार से कन्याकुमारी (वर्तमान जम्मू–कश्मीर से कन्याकुमारी) तक एक सूत्र में बँधे रहे हैं। भारतीय मनीषियों की रचनाओं व साहित्यों की प्रेरणा से पौराणिक मान्यताओं के आधार पर पवित्र तीर्थस्थलो की यात्राएँ, अनेकानेक त्योहारों के माध्यम से लोगों का पारस्परिक मिलन; उनके मध्य मिठास बोलता है। इससे स्वमेव भारत राष्ट्र की अवधारणा बलवती होती है।

प्राचीनकाल से ही, भारत के निवासियों की; सम्पूर्ण विश्व से पृथक अपनी एक विशेषता रही है। समुद्रों व पर्वतों से घिरा भारत, नदियों की कल–कल को अपने आँचल में समेटता हुआ भारत, विविध बोली भाषाओ और संस्कृतियों का संगम भारत, अनवरत अपने निवासियों को एकात्मकता की प्रेरणा देता रहा है। इस देश के लोग रुप–रंग भौगोलिक संरचना में भिन्न होते हुए भी एक दूसरे से एक विशिष्ट लगाव का अनुभव करते रहे है। वस्तुतः महाकाव्य काल से चली आ रही यही परम्परा एक सुदृढ राष्ट्र की नींव का निर्मायक तत्व है।

वस्तुतः राष्ट्र एक अमूर्त अवधारणा है जो लोगों के मध्य स्वानुभूति, स्वमान्यता और पारस्परिक लगाव से संचालित व नियमित होता है। राष्ट्र का स्वरुप समझने से पूर्व राष्ट्र और राष्ट्रजाति या राष्ट्रिकता (Nationality) में अन्तर करना अपरिहार्य हो जाता है। राष्ट्रिकता प्रायः ऐसे लोगों के समूह को कहा जाता है जो एक ही प्रजाति (Race), भाषा, धर्म, संस्कृति, भौगोलिक सघनता (Geographical Compactness) इत्यादि के कारण निकट से जुड़े होते हैं और एक जैसी राजनीतिक आकांक्षाओं तथा एक जैसे ऐतिहासिक विकास के कारण एकता की भावना से प्रेरित होते हैं। चूँकि प्रायः राष्ट्रिकता; जन्म की परिस्थितियों पर आधारित होती है, अतएव यह संकुचित भी हो सकती है जो कि राष्ट्र निर्माण में बाधा बन सकती है। तथापि राष्ट्रिकता को राष्ट्र के प्रति जागरुक बनाकर राष्ट्र को सुदृढ़ व अक्षुण्ण बनाए रखा जा सकता है।

राष्ट्र उन लोगों के समूह को कहते हैं जो निर्दिष्ट रुप से एक निश्चित भू–भाग में रहते हैं और सामान्य राजनीतिक आकांक्षाओं, सामान्य हितों, सामान्य इतिहास और सामान्य नियति की चेतना के कारण एकता के सूत्र में बँधे हुए अनुभव करते है। 'भिन्न–भिन्न प्रजातियों के लोग, भिन्न–भिन्न धर्मों, भाषाओं और संस्कृतियों, इत्यादि से संबंध रखते हुए भी जब एक ही राज्य के नागरिकों के रुप में एक साथ रहते है ओर एक ही साथ रहते है और एक ही राज्य के प्रति अखण्ड निष्ठा रखते हुए उसके लिए तन–मन–धन न्योछावर करने को तैयार रहते हैं, तब वे एक ही राष्ट्र के रुप में अपनी पहचान बनाते हैं। अतः

राष्ट्रीयता मनुष्य के जन्म की परिस्थितियों से निर्धारित नहीं होती अपितु वह सम्पूर्ण राज्य के स्थायी निवासियों को अपने अंचल में समेट लेती है।[1] प्रायः हम राष्ट्र एवं राष्ट्र की विभेदक रेखा का निर्धारण करने में भ्रम का शिकार होते हैं एवं दोनों को एक ही समझते हैं।

राष्ट्र और राज्य दो अलग–अलग सत्ताएं हैं। राष्ट्र एक जैविक इकाई है जो अनवरत विद्यमान रहती है; वह एक व्यापक अवधारणा है। 'वर्ष–शताब्दियों लम्बे कालखण्ड में राष्ट्र का विकास होता है। किसी निश्चित भू–भाग में निवास करने वाला मानव समुदाय जब उस भूमि के साथ तादात्म्य अनुभव करने लगता है। जीवन के विशिष्ट गुणों को आचरित करता हुआ समान परम्परा और महात्वाकांक्षाओं से युक्त होता है, सुख–दुःख की समान स्मृतियों और शत्रु–मित्र की समान अनुभूतियाँ प्राप्त कर परस्पर सम्बन्धो में ग्रथित होता है, संगठित होकर अपने श्रेष्ठ जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए सचेष्ट होता है और इस परम्परा का निर्वाह करने वाले तथा उससे अधिकाधिक तेजस्वी बनाने के लिए महान तप, त्याग, परिश्रम करने वाले महापुरुषों की श्रृंखला निर्मित होती है तब पृथ्वी के अन्य मानव समुदायों से भिन्न एक सांस्कृतिक जीवन प्रकट होता है। इस भावात्मक स्वरुप को राष्ट्र कहा जाता है। जब तक यह राष्ट्रीयता बनी रहती है तब तक राष्ट्र जीवित रहता है। इसके क्षीण होने से राष्ट्र क्षीण हो जाता है व इसके नष्ट हो जाने से राष्ट्र नष्ट हो जाता है। इस प्रकार राष्ट्र एक स्थायी सत्य है। राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु राज्य का आविर्भाव होता है। जो कि राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है। राज्य को बदला जा सकता है किन्तु राष्ट्र को बदलना असम्भव है।[2]

सतयुग का वर्णन करते हुए कहा गया है 'न राज्यं न च राजा ऽऽ सीत् न दण्डयो न च दण्डिकः'। यानि तब भी तो राष्ट्र रहा ही होगा। इसी प्रकार की कल्पना, कल्पना साम्यवादी उद्घोषक कार्लमार्क्स ने भी 'विदरिंग अवे आफ द स्टेट' (राज्य के क्षीण होने की बात) स्वीकार की है। उसकी भी यही कल्पना है कि अन्त में राज्य नहीं रहेगा अतः उसके अनुसार भी राष्ट्र ही शेष बचेगा अर्थात् तात्पर्य यह है कि राष्ट्र स्थायी तत्व है वह राज्य उसका निमित्त मात्र।

राष्ट्र एक अमूर्त मनोभाव है जो कि उसके नागरिकों को एकात्म मनोभावना के रुप में परिलक्षित होता है। इस एकात्म मनोंभावना का सृजन भी वस्तुतः उस राज्य के नागरिकों के अन्तर्मन में धड़कती हुई संस्कृति के स्पंदनो से होता है। इस संस्कृति के सृजन की प्रक्रिया को उस राष्ट्र की भौगोलिक सीमाएँ एवं पर्यावरणीय परिस्थितियाँ प्रभावित करती हैं। सोलहवीं शती की एक साहित्य समाजशास्त्री 'मैडम स्टॉल' मानती है कि ''जिन देशों की सीमाएँ सुरक्षित एवं भूमि उर्वर होती है वहाँ के नागरिक शान्तिप्रिय एवं सुखी होते हैं। वहाँ उपन्यास एवं महाकाव्य जैसे सुविस्तृत पृष्ठभूमि के साहित्य का विकास अधिक होता है। उक्त साहित्य विधाओं के विकास का अर्थ है कि उस राष्ट्र के नागरिकों की मनोभूमि का निर्माण, जो कि भूगोल एवं पर्यावरण से होता है।

यह संयोग मात्र नहीं है कि वैदिककाल से लेकर अद्यावधि भारतीय जन ने भारत–भू के प्रति मातृभाव का प्रकटीकरण किया है एवं 'माता भूमि : पुत्रोऽहं पृथिव्याः' के रुप में सदैव अपना आदरभाव प्रकट किया है। इसी प्रकार जन अर्थात् राष्ट्र के नागरिकों के मनोभावों की एकदिशता ही वस्तुतः राष्ट्र अथवा राष्ट्रवादी विचारधारा का सृजन करती है।

भारत की अपनी एक प्रकृति है। यदि पुस्तको के ऐतिहासक पृष्ठों को खंगाले तो यह स्पष्ट परिलक्षित होगा कि हमारे यहॉ सम्राटों या लक्ष्मी पुत्रों की तुलना में ऋषि–मुनियों को अधिक महत्व दिया गया है। हमारे राष्ट्र के मूल में आध्यात्म प्रधानता रही है। भौतिक समृद्धि हमारे यहाँ अवश्य थी किन्तु भौतिकता के प्रति लोभ यहाँ के निवासियों द्वारा कभी भी नहीं किया गया। राष्ट्र को चिरस्थायी बनाये रखने के लिए भौतिक लालच से दूर रहना नितान्त आवश्यक हैय जो हमारे भारत राष्ट्र की सजीवता का मूल मन्त्र रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 संस्कृति के चार अध्याय : राष्ट्र कवि रामधारी सिंह दिनकर

2 भारत की संस्कृति एवं कला : डॉ के सी श्रीवास्तव

3 धर्म पर दृष्टि : डॉ राम मनोहर लोहिया

4 दृष्टि और दर्शन : माधव सदा शिव राव गोलवरकर

5 समाजवादी दर्शन और लोहिया : लक्ष्मी कान्त वर्मा

[1]. ओ.पी. गाबा, राजनीति सिद्धान्त की रूपरेखा, पृष्ठ सं. –125

6 पंडित दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रीय जीवन की दिशा
7 पंडित दीनदयाल उपाध्याय आडिओलाजी एंड परसेप्शन : सी पी भाष्कर
8 नेचर इन इंडियन फिलोस्फी :मीरा बन्दुर
9 एन्सिएन्ट हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया : के सी सिंघल
10 ए हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया : रोमिला थापर